P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9* December 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

वैदिक काल में स्त्रियों की दशा

शिवांगी राव
सहायक प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास की संस्कृति
एवं पुरातत्व विभाग,
इविंग क्रिश्चियन कॉलेज,
प्रयागराज

सारांश

किसी समाज को जानने के लिए, उस समाज में महिलाओं स्थिति जानना बहुत आवश्यक है क्योंकि एक स्वस्थ्य समाज के निर्माण में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। समाज व देश के आदर्शों और उच्चतम मूल्यों का संरक्षण भी उन्होंने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। साथ ही उनके उदार दृष्टिकोण के कारण सामाजिक परम्पराएं एवं मान्यताएं जीवित है।[1] स्त्री, समाज की आधारशिला है। पुरूष के व्यक्तित्व का अंकुरण माता के अंक में ही होता है। वही उसकी पहली शिक्षिका है।[2] माता के जिन विशेषताओं से प्रभावित होता है वही कालान्तर में वही उसके चरित्र का अंग बन जाती है। यदि माता पुरूष के चरित्र की भूमि है तो पत्नी उसके विकास की प्रसार–स्तम्भ। पत्नी के रूप में स्त्री–पुरूष के हर सुख–दुख में साथ चलती हुई उसके हर काम में सहभागिनी बन जाती है।[3] उसकी सामाजिक स्थिति में सम्पूर्ण समाज प्रभावित होता है। स्त्री की उन्नति से ही समाज की उन्नति होती है वह समाज के उन्नति का माप–दण्ड है।[4]

प्रत्येक देश एवं काल में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को ही अधिक महत्व दिया गया। शारीरिक संगठन की जन्मजात विशेषताओं के कारण पुत्री की अपेक्षा पुत्र अधिक बलशाली होता है। वह सम्पत्ति बृद्धि करने में वह पिता को महत्वपूर्ण योग देता है। पिता की मृत्यु के पश्चात कुटुम्ब के लिए जीविकोपार्जन का प्रमुख भार उसी पर पड़ता है।

पुत्री की स्थिति इससे विपरीत है वह वंश के लिए स्वयं एक उत्तरदायित्व है।[5] योग्य वर मिलने पर यदि स्त्री आजीवन अविवाहित रही तो उसका भार उसके माता–पिता या भाई–बहन को वहन करना पड़ता है।[6] अविवाहित पुत्री को पैतृक सम्पत्ति का अधिकार था।[7] उसके विवाह के समय भी दहेज या उपहार में पैतृक सम्पत्ति दिया जाता था।[8] इन्हीं कारणों से वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र का ही महत्व अधिक है।

मुख्य शब्द : वैदिक काल, स्त्री, पुत्री, वंश, आजीवन, अविवाहित स्त्री।

प्रस्तावना

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएं की गई है।[9] ऋग्वेद के एक स्थान पर पुत्र को अपने पिता के कार्य सम्पादन में सहायक एवं आज्ञाकारी बताया गया है जिससे उसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है।[10] इस प्रकार के अनेक उदाहरण अथर्ववेद में भी मिलते है।''[11] पुत्र लौकिक और पारलौकिक दोनों के लिए उपयोगी समझा जाता था।

पुत्र जन्म की अपेक्षा पुत्री जन्म की यह न्यनाधिक अप्रियता केवल सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से थी। परन्तु इसका कारण यह नहीं कि प्राचीन भारत में पुत्री के संरक्षक उसके साथ दुर्व्यवहार या अत्याचार करते थे या उसे हेय तथा त्याज्य समझते थे। विदेशों के प्राचीन इतिहास में अवश्य ऐसे उदाहरण मिलते है जब पुत्री को स्थायी (व्याधि) बीमारी समझकर उसके माता–पिता उत्पन्न होते ही हत्या कर डालते थे या कही फेंक आते थे। प्राचीन भारतीय इतिहास में इस प्रकार का साक्ष्य नहीं मिलता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक काल की भाँति प्राचीन काल में भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र प्रिय था। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि समाज में पुत्री के लिए कोई स्थान नहीं था। यदि वैदिक साहित्य का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि तत्कालीन समाज में पुत्री जन्म चिन्ताजनक नहीं था जितना कालान्तर में हो गया। इसका विशेष कारण था। वैदिक काल में पुत्र और पुत्री के सामाजिक एवं धार्मिक अधिकारों में बहुत अन्तर नहीं था। वैदिक काल में स्त्रियों के आदर और सम्मान का काल था। पुत्र के समान पुत्री का उपनयन संस्कार, दीक्षा एवं यज्ञ आदि में भाग लेती थी। स्त्रियों को गृहस्वामिनी, अर्धांगिनी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। वैदिक काल की कुछ विदुषी

महिलाओं में अपाला, घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने वैदिक ऋचाओं की रचना की थी। उन्हें ब्रह्मवादिनी और मंत्रदृष्टा भी कहा गया है। उन्हें अपने बौद्धिक व आन्तरिक शक्तियों के विकास का अधिकार था। शिक्षा पूरी होने पर वे अध्यापन कार्य कर सकती थी। ऐसी महिलाओं को 'उपाध्याया' कहा जाता था। शिक्षा के बाद विवाह करने वाली स्त्रियों को 'सद्योवाहा' कहा जाता था। सामान्यतः विवाह कार्य माता–पिता की इच्छा से होता था स्वयंवर की प्रथा भी इस युग में प्रचलित थी। पत्नी पतिव्रता का पालन करती थी और पति भी एक पत्नी व्रत करता था। ये दोनों आदर्श दाम्पत्य जीवन जीते थे।

'मजूमदार, ने लिखा है कि परिवार में स्त्रियों का आदरणी स्थान प्राप्त था। दम्पत्ति शब्द का प्रयोग पति–पत्नी दोनों के लिए किया जाता था'' वैदिक काल में विवाह के अवसर पर दोनों पक्ष उपहार आदान–प्रदान करते थे। बाद में यह प्रथा एकपक्षीय हो गयी। इस प्रथा को दहेज प्रथा की पूर्वगामी भी कहा जा सकता है।

विधवा विवाह और नियोग प्रथा का प्रचलन था वैदिक काल में पर्दा प्रथा नहीं था। वैदिक साहित्य में गन्धर्व विवाह और राक्षस विवाह का उल्लेख मिलता है परन्तु समाज में दोनों परिवारों के सहमति से सम्पन्न विवाह को ही मान्यता मिली थी। परिवार मुखिया पिता था लेकिन माता को भी समान अधिकार था।[12]

वैदिक काल में बाल विवाह की प्रथा नहीं थी। कन्याओं का विवाह वयस्कावस्था में होता था। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि 'सुदर्शना' एवं अलंकृता होने पर कन्या स्वयं पुरूषों में से अपना साथी चुन ले[13] स्वयंवर की इस प्रणाली से स्पष्ट है कि कन्याओं का विवाह युवावस्था में ही होता था। घोषा का विवाह पर्याप्त आयु में हुआ था। इसी प्रकार सूर्या का विवाह भी पूर्ण यौवन काल में हुआ था।[14]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दीर्घकाल तक कन्याओं का विवाह वयस्कावस्था में ही होते रहे। परन्तु साहित्य साक्ष्यों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता कि चार सौ ई0पू0 समाज में एक नयी विचार धारा का जन्म हुआ, जिसमें कन्याओं की विवाह आयु को कम करने की चेष्टा की गयी और बाद में वह सफल भी हुई। यह परिवर्तन सूत्र–साहित्य में दिखायी पड़ता है।

यौवनावस्था में विवाह होने से कन्याओं को शिक्षा–दीक्षा मिलने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था। यह शिक्षा गृहकार्य से सम्बन्धित होती थी। माता–पिता के साथ लम्बे समय तक रहते हुए पुत्रियों को गृहस्थ जीवन के दैनिक कार्य में दक्षता प्राप्त हो जाती थी। ऋग्वेद में गाय का दूध दुहती हुई तथा दही और मक्खन तैयार करती हुई कन्याओं का उल्लेख मिलता है।[15] उसी ग्रंथ में अपाला का उल्लेख मिलता है जो अपने माता–पिता के कृषि कार्य का निरीक्षण करती थी।[16] गृहकार्य के लिए कन्यायें कूपों से जल लाती थी[17] और अवकाश मिलने पर कताई, बुनाई, सिलाई का काम करती थी।[18] वैदिक साहित्य में स्त्रियों का उल्लेख रजयित्री, विडलकारी, पेशकारी आदि में हुआ है। इन घरेलू धन्धों में कन्याओं को अनिवार्य शिक्षा दी जाती थी। कालान्तर में गृहकार्य में दक्ष स्त्रियों को 'स्त्रीप्रज्ञा' का विशेषण दिया गया है। उपनिषद काल में याज्ञवल्क्य की स्त्री कात्यायनी इसी नाम से सम्बोधित हुई है।

वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे उल्लेख मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि गृहस्थ कार्यों के अतिरिक्त महिलाओं को संस्कृति के अन्य प्रधान उपांगो में भी शिक्षा दी जाती थी। इनमें संगीत एवं नृत्य महत्वपूर्ण थे। गाती हुई स्त्रियों का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।[19] इसी प्रकार विदभ (सभा) एकत्र महिलाओं को भी ऋक्–गान करते हुए पाते है।[20] संगीत नृत्य दोनों घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है अतः निश्चित रूप से दोनों कलाओं की शिक्षा साथ–साथ होती होगी। ऋग्वेद के कुछ स्थानों पर नृत्यकुशल स्त्रियों का उल्लेख मिलता है।[21] गृहस्थ कार्यों एवं ललित कलाओं के अतिरिक्त कन्याओं को वैदिक शिक्षा का भी अधिकार था। इस काल में पुत्री की शिक्षा उतनी ही आवश्यक समझी जाती थी जितनी पुत्र की। ऋग्वेद में शिक्षित स्त्री–पुरूष के विवाह की उपयुक्ता बताई गई है[22] यजुर्वेद में भी इसी प्रकार का कथन मिलता है।[23]

प्रारम्भ में पुत्रों की तरह पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था और उसके बाद वे ब्रह्मचारिणी के रूप में शिक्षा प्राप्त करती थी। कन्या का यह ब्रह्मचर्य–काल उसके आगामी गृहस्थ काल के लिए तैयारी मात्र थी। इसमें वह अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों को विकसित करती हुई संस्कृति एवं धर्म के उन समस्त उपकरणों से भिज्ञ हो जाती थी जिनकी उसे गृहस्थ जीवन में आवश्यकता होती थी। वैदिक काल में अनेक विदुषियों के उल्लेख मिलता है। जो पुरूषों की भाँति अपने–अपने विषय में पारंगत प्रदर्शित की गयी है। इस काल में शिक्षा का आधार मूलतः याज्ञिक एवं धार्मिक था। उस समय स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार था। अतः मन्त्र पाठ के लिए वेद का अध्ययन आवश्यक था।[24]

जैसा कि उपर्युक्त वर्णन है कि प्राचीन भारत में शिक्षा का अर्थ बड़े विस्तृत रूप में लिया जाता था। उसके अन्तर्गत स्त्री की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास की पूर्ण योजना थी। कन्याओं का ब्रह्मचर्य काल इसी लक्ष्य के लिए आयोजित था। ऋग्वेद[25] तथा अथर्ववेद[26] में प्रत्येक स्त्री के चार पति बताये गये है :–

1. सोम
2. अग्नि
3. गन्धर्व
4. वास्तविक पुरूष जिसके साथ उसका विवाह होता था।

इस कथन में गूढ़ सांस्कृतिक रहस्य है। इसके माध्यम से विवाह के पूर्व कन्या के व्यक्तित्व में विविध गुणों की कल्पना की गयी है। वह काल जिसमें उसका काल्पनिक पति सोम है। उसके सौन्दर्य एवं संस्कृति के विकास की व्यवस्था है। वह अग्नि के नियंत्रण में चारित्रिक शुद्धता एवं याज्ञिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करती है। व्यक्तित्व विकास की दूसरी अवस्था में है। तीसरी अवस्था उसका काल्पनिक पति गन्धर्व होता है। इस समय वह विविध ललितकलाओं जैसे–संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि में शिक्षा पाती है। इस प्रकार इन तीनों

अवस्थाओं का अतिक्रमण करने के पश्चात वह एक सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित कन्या बन जाती है। उसमें संस्कृति एवं धर्म के समस्त उपकरण आर्विभूत हो जाते है जिनकी उसे गृहस्थ जीवन में आवश्यकता होती है। इस व्यक्तित्व निर्माण के पश्चात् उसका योग्य व्यक्ति से विवाह होता है और यही व्यक्ति उसका वास्तविक पति होता है।

उपर्युक्त वर्णन कोरी कल्पना नहीं है। स्त्री शिक्षा के अन्तर्गत जो विभिन्न विषय समय–समय पर अध्यापित होते रहे। उसका चित्रण वात्सायन के कामसूत्र में मिलता है। इसमें 64 कलाओं के अध्यापन की योजना का उल्लेख है। इसमें पुस्तक वाचन, काव्य, पुराण, प्रहेलिका, छंद, कोष, संगीत, नृत्य तथा चित्रकला आदि उल्लेखनीय हैं।

परन्तु प्रथम शताब्दी ईसा तक आते–आते स्त्री शिक्षा का परित्याग होने लगा। तक्षशिला तथा नालन्दा के विश्वविद्यालयों में जहॉ हजारों विद्यार्थी अध्ययन करते थे, वहा एक भी महिला का उल्लेख नहीं मिलता।

ब्रह्मचार्य आश्रम के पश्चात् कन्या विवाह करती थी और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती है। भारतीय समाज, व्यवस्थाकारों के अनुसार प्रत्येक देश में विवाह संस्कार समस्त संस्कारों में सर्वप्रधान है। संसार के प्रत्येक देश में विवाह–संस्था की प्रतिष्ठा क्रमिक विकास का परिणाम है। अति प्राचीन काल में जिस समय मनुष्य असभ्य था, ऐसे समाज की कल्पना की जा सकती है जिसमें नियमित रूप से विवाह नहीं होते थे और नर–नारी स्वेच्छाचारी होते थे। लेकिन प्राचीन भारतीय साहित्य में कोई ऐसा उदाहरण नहीं जिसके आधार पर कहा जा सके कि अमुक समय में भारतीय समाज में विवाह संस्था नहीं थी। महाभारत के कुछ अंशों के आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि महाकाव्य काल में भी भारतवर्ष के कुछ प्रदेशों में विवाह संस्था प्रतिष्ठित थी। एक स्थान[27] पर पाण्डु का कुन्ती से कथन है कि प्राचीन काल में नारियां अनियंत्रित एवं स्वेच्छाचारिणी थी वे एक व्यक्ति को छोड़कर दूसरे व्यक्ति को ग्रहण करती थी। इस तरह की स्थिति उत्तरकुल देश, में विद्यमान थी।[28] एक व्यक्ति ने अपने पिता के समक्ष ही अपनी माता के प्रति कामाचार प्रदर्शित किया। ऐसी सामाजिक उच्छखलता से क्षुब्ध होकर अन्त में उद्दालक के पुत्र महर्षि श्वेतकेतु ने विवाह की मर्यादा स्थापित की। यह काव्यकार की कल्पना है। उत्तरकुल कल्पनिक देश है। काव्यकार ने प्राचीनकाल के एक ऐसे समाज की कल्पना की हैं कि जिसमें विवाह संस्था का अभाव था।

ऋग्वैदिक काल में विवाह एक पवित्र एवं उच्च संस्कार माना जाता था।[29] इसका ध्येय नर–नारी को गृहस्थ जीवन में प्रवेश कराना था।[30] वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए विवाह आवश्यक समझा जाता था। इसी से पत्नी की प्रशंसा में उसे गृह का अलंकरण[31] अथवा स्वयं गृह[32] कहा गया है। पति–पत्नी दोनों मिलकर यांज्ञिक कार्य करते थे। लौकिक एवं पारलौकिक शान्ति के लिए ऋग्वैदिक काल में भी पुत्रों की आवश्यकता समझी जाती थी। उनकी प्राप्ति के लिए विवाह आवश्यक था।

इस प्रकार ऋग्वैदिक काल में विवाह आवश्यक समझा जाता था, परन्तु अनिवार्य नहीं। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि दीर्घकाल तक कन्याएं अपने माता–पिता के घर रहती थी। ऐसे कन्याओं को 'अमाजू' कहते थे।[33] अथर्ववेद में भी अविवाहित कन्याओं का आजीवन पितृगृह में रहते हुए उल्लेख किया गया है।

याज्ञिक कर्मों की प्रधानता के कारण पुत्रों की आवश्यकता बढ़ती गई।[34] ऋग्वैदिक काल में यज्ञ कर्म करने का पुत्रों का अधिकार हीं नहीं था उसे पुत्रियां भी कर सकती थी। धीरे–धीरे पुत्रों का एकाधिकार हो गया और पुत्रियां उससे वर्जित की जाने लगी।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप वैदिक काल के पश्चात स्त्रियों के लिए विवाह संस्कार अनिवार्य हो गया।

पुत्री के विवाह के पूर्व माता–पिता या अभिभावक वर के विषय में विभिन्न बातें स्थिर करने के पश्चात विवाह करते थे। अथर्ववेद में पुत्री के लिए सुवर प्राप्त करने के लिए कुछ मन्त्रों का प्रयोग करते थे।[35] वर की तरह वधू के भी गुणों का ध्यान रखा जाता था। ऋग्वेद में स्त्रियों के सौन्दर्य, संस्कृति आदि गुणों के साथ–साथ धनाढ़यता को भी महत्व दिया गया है। ऋग्वेद के एक स्थान पर स्पष्ट कहा गया है कि स्वस्थ एवं धनवती कन्या के लिये वर–प्राप्ति सुगम है।[36]

ब्राह्मणों ग्रन्थों में आठ प्रकार के विवाह की कल्पना की गयी है। इन विवाह प्रकारों का विकास धीरे–धीरे हुआ, परन्तु कुछ अंशों में इसके बीच ऋग्वेद में भी विद्यमान हैं।

प्राचीन साहित्य में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है–

(1) ब्रह्म (2) प्राजापत्य (3) दैव (4) आर्ष (5) गान्धर्व (6) आसुर (7) राक्षस (8) पैशाच।

इसमें भी दो वर्ग हैं। प्रथम चार धर्मविहिप एवं शास्त्रानुमोदित तथा अन्तिम तीन धर्मविरूद्ध बताये गये है। गान्धर्व विवाह के विषय में मतभेद है।

ब्रह्म विवाह को प्रादुर्भाव ऋग्वेद में मिलता है। प्रारम्भ में कन्याओं का विवाह वयस्कावस्था में होते थे उस समय उनकी भी सहमति आवश्यक रहती थी। कालान्तर में जब बाल–विवाह का प्रतिपादन हुआ तो वर का चुनाव पिता का उत्तरदायित्व हो गया। बाद में ब्रह्म विवाह ही सबसे अधिक प्रचलित हुआ।

यदि पिता किसी यज्ञ के समय अपनी अलंकृता कन्या को यज्ञ कराने वाले किसी पुरोहित को दे दे तो उसे दैव विवाह कहते है।[37] इसमें यज्ञ के अवसर पर कन्या भी अपने भावी पति के गुणों–अवगुणों से अवगत हो जाती थी और अपने पिता से इच्छा अनिच्छा प्रकट कर देती थी। लेकिन वैदिक यज्ञों के अंत के साथ दैव विवाह भी समाप्त हो गया।

आर्य विवाह में पिता अपने होने वाले जामाता से एक गाय और बैल लेकर उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर देता था। स्पष्ट यह कन्या–विक्रय का ही परिवतर्तित रूप है। प्राचीन काल में यदा–कदा कन्यायों का क्रय–विक्रय होता था। परन्तु कालान्तर में समाज सुधारकों ने इसका विरोध किया।[38] विरोध के कारण इस प्रथा का धीरे–धीरे ह्यस होने लगा। फिर भी समाज में एक ऐसा कट्टर वर्ग था जो पुरानी प्रथा को छोड़ने को तैयार नही था।

गन्धर्व एक जाति थी, जो अनुरागी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थी।[39] इसमें युवक–युवती विवाह के पूर्व ही हमारे समक्ष प्रेमी–प्रेमिका के रूप में आते हैं। गन्धर्व विवाह पति–पत्नी की यौवनावस्था की उपेक्षा करता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत विवाह करने वाले निश्चित रूप से वयस्क होते थे। ऋग्वैदिक काल में यह प्रणाली विद्यमान थी। ऋग्वेद में कहा गया है कि सुन्दरी एवं अलंकृता कन्या पुरूषों के मध्य में स्वयं अपना पति चुन लेती हैं।[40] ऋग्वेद 7.2.5 तथा 4.58.8 में समनों (उत्सव, समारोह) का उल्लेख है जिसमें कन्याएं स्वयं अपना पति ढूंढ लेती थी। अथर्ववेद में (2.36.4–5, 603) स्वयं माता–पिता कामना करते हैं कि उनकी कन्या स्वेच्छानुसार एवं प्रणायानुकूल पति प्राप्त कर सके।

असुर विवाह प्रणाली में पिता एक प्रकार से अपनी कन्या का विक्रय करता था। यह कन्या के बदले में उसे जमाता या उसके संरक्षक से धन–धान्य मिलता था। प्रणाली अति प्राचीन है। जिस समय कन्या कुटुम्ब की सामाग्री समझी जाती थी। उस समय तक कोई संरक्षक उसे अधिक समय तक अपने से अलग नही करते थे। जब विवाह अनिवार्य हो जाता था तो उसके बदले पिता का जमाता से प्रचुर धन–धान्य मिलता था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भी यदा–कदा भारतवर्ष में कन्या का क्रय–विक्रय होता था। जैमिनि ने एक वैदिक अंश का उल्लेख किया है जिसमें ज्ञात होता है कि विवाह हेतु कन्या के पिता को 100 गाय तथा एक रथ देने की प्रथा थी।[41]

राक्षस विवाह प्रणाली के अन्तर्गत कन्या का अपहरण होता था। प्रतीत होता है कि यह विवाह प्रणाली भी पूर्व ऐतिहासिक काल की है। जब स्त्रियां युद्ध में प्राप्त अन्य सामग्रियों के समान समझी जाती थी। राक्षसो की भाँति क्रूर कर्मो की अपेक्षा होने के कारण इस विवाह का नाम राक्षस विवाह पड़ा। नाम से ही ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में यह प्रणाली अच्छी नही समझी जाती थी। परन्तु कालान्तर में यह अपहरण शूरकर्मा के लिए गौरव की बात थी। और राक्षस–विवाह प्रणाली वीरोचित्र समझी जाने लगी। इस विवाह का प्रचलन अधिकांश युद्धरत क्षत्रिय जाति में हुआ।

इस विवाह का उदाहरण सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। इसमें विमद ने पुरूमित्र की कन्या कमद्यु का अपहरण किया था।[42]

पैशाच विवाह में व्यक्ति, सोती हुई या अचेनत कन्या के साथ सम्भोग करता है। पिशाच–कर्म होने के कारण इसका नाम पैशाच विवाह किया गया। इस विवाह में धार्मिक क्रियाओं का अभाव है। कुछ व्यवस्थाकारों ने इसे अधर्म्म विवाहों में स्थान दिया है उन्होंने भी इसकी निन्दा की है। परन्तु कन्या के हित को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया है। यदि पैशाच कर्म करने वाले व्यक्ति को सम्भुक्त कन्या को अपनी धर्म विहिप पत्नी स्वीकार करने पर विवश न किया जाता तो उस दशा में कन्या का पूरा जीवन व्यर्थ हो जाता। उससे एक ओर वह निर्देश कन्या समाजत्यक्ता होकर किसी अन्य का पापकर्म को स्वयं भुगत्ती और दूसरी ओर वह व्यक्ति अपने पाप कर्म से मुक्त होकर अपने दुराचारों की पुनरावृत्ति करता घूमता। इसी सामाजिक तथ्य को ध्यान रखकर अपने विवाह व्यवस्था में स्थान दिया।

वर्ण व्यवस्था–प्रधान समाज में यह स्वाभाविक ही था कि अन्य विषयों की तरह अष्ट प्रकार विवाह प्रणाली भी वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ही प्रतिष्ठित होती।[43] इसी उद्देश्य से व्यवस्थाकारो ने भिन्न–भिन्न विवाहों को भिन्न–भिन्न वर्णो के लिए उपयुक्त बताया है यदि समस्त साक्ष्यों का अवलोकन करे तो उपर्युक्त योजना में अनेक परस्पर विरोधी बाते मिलेंगी। यह विवाह योजना किसी काल की नही है। विभिन्न कालों के विवाह प्रकारों को वर्ण व्यवस्था के आधार पर व्यवस्थित करने की कोशिश की गयी है। समाज में समय–समय पर होने वाले परिवर्तन इसके व्यवहारिक रूप को बहुत कुछ बदलते रहे। इस व्यवस्था के अनुसार गान्धर्व, आसुर और पैशाच वैश्यो तथा सूद्रो के लिए थे। यह कोरी योजना थी। इसमें व्यवहारिक अंश शून्य था। ऐतिहासिक काल में इस विवाह का एक भी उदाहरण नही मिलता। यह पूर्व एतिहासिक काल की प्रणाली थी।

वैदिक कालीन समाज में एक पत्नीव्रत की प्रथा थी ऋग्वेद में अनेक उदाहरण मिलते हैं ऋग्वैदिक अधिकांश देवता अग्नि, वरूण सोम आदि एक पत्नीक थे। ऋग्वैद के अधिकांश स्थलो पर पुरूष की एक ही स्त्री का उल्लेख किया गया है।[44] बहुपत्नी मनुष्यो का जीवन एकपत्नी मनुष्यों की अपेक्षा दुखपूर्ण हो जाता था।

सती प्रथा प्राचीन काल में विभिन्न जातियों में प्रचलित थी। यूनानी, स्लाव, तथा चीनी स्त्रियां अपने पति की मृत्यु पर अपने जीवन का अन्त कर देना अपना कर्तव्य समझती थी। इसका प्रमुख कारण दम्पत्ति अनुरक्ति, सतीत्व की रक्षा की चिन्ता, साहचर्य की भावना रही होगी। अवेस्ता और ऋग्वेद के आधार पर कहा जा सकता है भारतीय आर्यो में यह प्रथा प्रचलित नही थी। कुछ विद्वानो ने 'सती प्रथा' के अस्तित्व को ऋग्वेद के एक अंश[45] के आधार पर सिद्ध करने की चेष्टा की थी। लेकिन यह उस अंश के संदिग्ध पाठ या अशुद्ध अर्थ पर आधारित था। इस प्रचलित प्रणाली के अनुसार विधवा अपने पति के शव के साथ केवल कुछ क्षणो के लिए लेटती थी। उसके बाद उसे कहा जाता था कि ''नारी उठो और जीव लोक में लौट आओ। तुम एक मृत मनुष्य के पास लेटी हो। इसी प्रकार का अंश अथर्ववेद में भी मिलता है। परन्तु इससे भी समाज में सतीप्रथा के प्रचलन का साक्ष्य नही मिलता है। यह अंश भी यही सिद्ध करता है कि अथर्ववेद के पूर्व किसी समय आर्यो में सती प्रथा का प्रचलन हो गया था।

ऐसा लगता है कि 300 ई0पू0 से सती–प्रथा की पुनः स्थापना का प्रयत्न किया गया था। क्योंकि अशोक के अभिलेखों में कहीं भी सती प्रथा का प्रमाण नही मिलता है। स्ट्रैबो, ने लिखा है कि सिकन्दर के सहगामी यूनानियों ने कठो के बीच इस प्रथा का प्रचलन देखा था। इसका प्रचलन सिंधु, पंजाब, राजपूताना के क्षत्रिय जातियो के बीच था।[46] महाकाव्य काल में सती प्रथा का कुछ उदाहरण मिलता है। यह प्रथा क्षत्रिय जाति तक ही सीमित था, लोकमान्य नही हुआ था। पहले विधवा की सामाजिक स्थिति शोचनीय नही थी बाद में जितनी अधिक हो गयी।

एक स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् अपने देवर या किसी अन्य के साथ नियोग प्रथा स्थापित करती थी। ऋग्वैदिक काल में नियोग प्रथा के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं।[47] लेकिन विधवा के स्थायी पुनर्विवाह के स्पष्ट प्रमाण का अभाव है। लेकिन अथर्ववेद में विवाह की प्रथा अधिक स्पष्ट दिखायी देती है। ऐसा ज्ञात होता है कि ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी तक समाज में स्त्रियों के पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इस विवाह के लिए न्याय विभाग की अनुमति आवश्यक थी।

स्त्री समाज के एक वर्ग में वेश्यावृति प्रत्येक काल एवं देश में पाई गई है। भारत में वैदिक काल में इसके प्रमाण मिलते हैं। इस काल में योग्यवर न मिलने के कारण कन्याएं दीर्घकाल तक आविवाहित रहती थी। वे स्वतंत्र रहती थी। वे पुरूषों में स्वतन्त्र होकर मिलती थी जिसमें कुछ पुरूषो के दुष्भाव के कारण विपथ हो जाती थी। ऋग्वेद के अनेक स्थानो पर पुरूषो के साथ स्त्रियों के गुप्त प्रेम का उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में पर्दाप्रथा का अस्तित्व नही था। ऋग्वेद में शुभकामना की गई है कि वधु सभाओं में आत्म विश्वास में बोल सके।

माता के रूप में स्त्री का सम्मान प्रत्येक व्यक्ति ने स्वीकार की है। शतपथ ब्राह्मण में शिशु के लिए मां गुरू का कार्य करती थी, तैत्तिरीय उपनिषद में माता देवता के समान थी, माता की सर्वमान्य प्रतिष्ठा के कारण ही वैदिक कालीन अनेक ऋषियों के नाम माता के नाम से सम्बद्ध थे। इसमें महिदस, देवकी पुत्र कृष्ण उल्लेखनीय हैं। प्राचीन भारतीय व्यवस्था मे भी स्त्री को विशेष महत्व दिया गया था।[48]

उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य वैदिक काल में स्त्रियों की दशा का विवेचन करना है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन समाज में नारी का विशेष महत्व था। वह स्वयं लक्ष्मी है। जिस कुल में उसे दुख मिलता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है और इसके विपरीत जिस कुल में वह दुख रहित होती है। उस कुल का संवर्धन होता है।[49]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारतीय इतिहास में महिलाएं, खुराना एवं चौहान, पेज नं0 12*
2. *गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरूः महाभारत – 1. 196.16.*
3. *अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा–महाभारत 74–40.*
4. *यन नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता मनु – 3.56*
5. *भारवर्ष का सामाजिक इतिहास, डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डेय पेज नं0 100–101.*
6. *ऋग्वेद 1.117, 72.17, 710393. अथर्ववेद 9.14.3*
7. *ऋग्वेद, 10.89, 29–परा देहि शामुत्यं ब्रहाम्यो विमजा वसु।*
8. *ऋग्वेद 1.109, 2.*
9. *ऋग्वेद 1.91.20, 3.1.23, 10.85.25.*
10. *ऋग्वेद – 1.73.3 और 1.68.5.*
11. *अथर्ववेद 3.23.26.11.2*
12. *भारतीय इतिहास में महिलाए, खुराना एवं चौहान पेज नं0 13*
13. *ऋग्वेद 10, 27.12.*
14. *ऋग्वेद 1.124, 7*
15. *ऋग्वेद 1.135.7*
16. *ऋग्वेद 8.80*
17. *ऋग्वेद 1.191*
18. *ऋग्वेद–2,36 ऋग्वेद– 2.32, 4*
19. *ऋग्वेद 9.66.8*
20. *ऋग्वेद 10, 71.11*
21. *ऋग्वेद 1.92.4*
22. *ऋग्वेद 3.55.16*
23. *यजुर्वेद 8.1*
24. *ऋग्वेद 8.91.1*
25. *ऋग्वेद 10, 85, 40–41*
26. *अथर्ववेद 5.17–2, 14.2–4*
27. *अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन्वरानन, कामाचारविहारिणयः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि–महाभारत 1.122.4*
28. *उत्तरेषुच रम्योर कुरूष्वेद्यपि दद्श्यते– महाभारत 1. 122.7*
29. *ऋतस्य यौनों सुकृतस्य लोके – ऋग्वेद – 10.85.40*
30. *ऋग्वेद 10.85.36*
31. *ऋग्वेद 1.66.3*
32. *ऋग्वेद 3.53.4*
33. *ऋग्वेद 5.3.2– और 5, 28.3*
34. *ऋग्वेद 1.117.2.17.7.10, 39.3*
35. *अथर्ववेद 2.36*
36. *शतपथ ब्राह्मण 1.2.5.16*
37. *बौधायनन धर्मसूत्र 1.11.5 दक्षिणासु–नीयम नास्त्रन्तवेदि ऋत्विजे स दैवः*
38. *बौधायन 1.11.20–9 जैमिनी 6.1.15द मनुस्मृति 3. 51,54,–55 10.9, 11 61*
39. *तैत्तिरीय संहिता 6.165 स्त्रीकाया वै. गन्धर्वाः।*
40. *ऋग्वेद 10–26, 12– मद्रा वधूर्यवति यत्सुपेशा स्वयं मा मित्रं कृणुते जने हति।*
41. *जैमिनि 6. 1. 15*
42. *ऋग्वेद 1. 192. 19, 1. 116. 1.*
43. *भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास – पृष्ठ 152*
44. *ऋग्वेद 1. 124, 7 3.2.10 71.4,*
45. *ऋग्वेद 10. 18. 7*
46. *स्ट्रैबो – 15, 1.30*
47. *ऋग्वेद 10, 40, 2, 10, 18, 8*
48. *भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास – पृष्ठ 187 – 189*
49. *रामायण 1. 17. 3– न हये नामुत्सते हन्तुं स्त्री स्वमावेत रक्षिताम्।*